संस्कृति शोध संदेश

वर्ष - 3 अंङ्क - 10 अगस्त-अक्टूबर 2014 पृष्ठ - 60

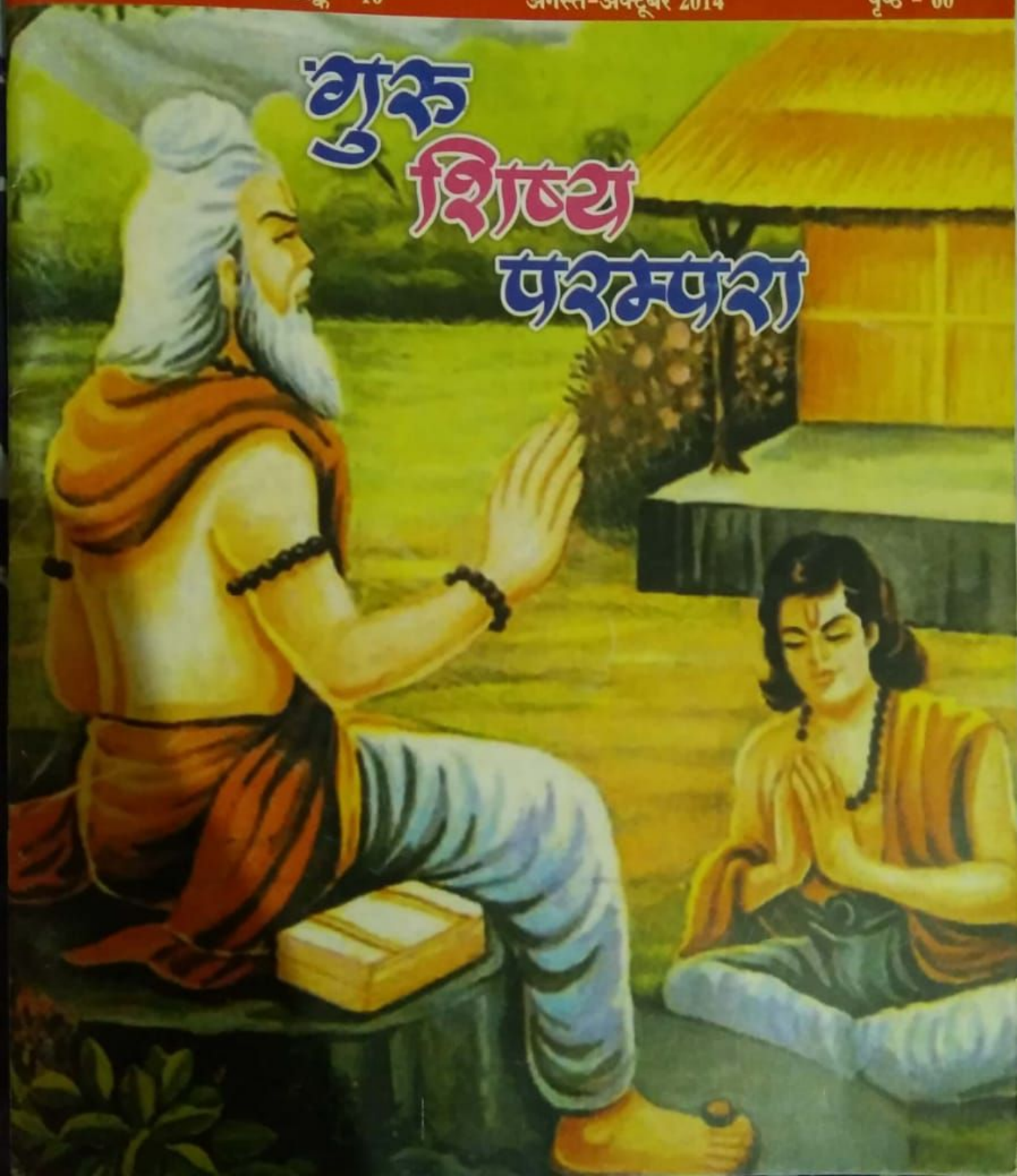

जैन अध्यात्म-साधना में गुरु की महत्ता

o डॉ. सुनीता इन्दोरिया

सहायक प्रोफेसर– जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)

अन्य अध्यात्म-साधनाओं की तरह जैन अध्यात्म-साधना के क्षेत्र में भी 'गुरु' या 'आचार्य' की उपादेयता सर्वमान्य है। जैन शास्त्रों में गुरु-महत्ता के विषय में अनेकों निरूपण प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ–

गुरुर्विधाता गुरुरेव दाता,
गुरुः स्वबन्धुर्गुरुरत्नसिन्धुः।
गुरुर्विनेता गुरुरेव तातो,
गुरुर्विमोक्षो हतकर्मपक्षः।।

(गीत वीतराग, 9/5)

जो परम्परा से आत्मा और पर का भेद दर्शाते हैं- ऐसे गुरु ही दिनकर (सूर्य) हैं, गुरु ही चन्द्रमा हैं, गुरु ही दीपक है और गुरु ही देव है। और भी–

गुरु दिणयरु गुरु हिमकिरणु गुरु दिवउ गुरु देउ।
अप्पहँ परहँ परंपहँ जो दरिसावइ भेउ।।

(परमात्मप्रकाश)

गुरु शब्द का शाब्दिक अर्थ

'गुरु' शब्द का अर्थ महान् होता है। लोक में अध्यापकों को गुरु कहते हैं। माता-पिता भी गुरु कहलाते हैं, परन्तु धार्मिक प्रकरण में आचार्य, उपाध्याय व साधु गुरु कहलाते हैं, और अर्हन्त परमेष्ठी परमगुरु कहलाते हैं, क्योंकि वे जीव को उपदेश देकर अथवा बिना उपदेश किये ही केवल अपने जीवन का दर्शन कराकर कल्याण का सच्चा मार्ग बताते हैं, जिसे पाकर शिष्य सदा के लिए कृतकृत्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त विरक्तचित्त सम्यग्दृष्टि श्रावक भी उपर्युक्त कारणवश ही गुरु संज्ञा को प्राप्त होते हैं। दीक्षा गुरु, शिक्षा गुरु, परमगुरु के भेद से गुरु अनेक प्रकार के होते हैं।

जो अज्ञान के अँधेरे से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाए वे सद्गुरु कहलाते हैं। शास्त्रकार ऐसे ही गुरु को नमस्कार करके ग्रन्थ का शुभारम्भ करते हैं। यथा–

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

जिन्होंने अज्ञानयप अन्धकार से अन्धे हुए लोकचक्षुओं को ज्ञानरूप अंजन की शलाका से उन्मीलित किया है, उन गुरु को मेरा नमस्कार है।

अर्हन्त (तीर्थंकर) भगवान परमगुरु हैं

साक्षात् आत्मा को परमात्मा बनाने में कारण अर्हन्त (तीर्थंकर देव) परमगुरु हैं। अनन्त ज्ञानादि महान् गुणों के द्वारा जो तीनों लोकों में भी महान हैं। वे भगवान अर्हन्त त्रिलोकगुरु हैं। यथा–

'अनन्तज्ञानादिगुरुगुणैरत्रैलोक्यस्यापि गुरुरतं त्रिलोकगुरुम्'

(प्रवचनसार, तात्पर्यवृत्ति-79)

यथार्थ में सच्चे देव ही सच्चे गुरु हैं, वे ही मोक्षमार्ग के उपदेशक हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही मोक्षमार्ग के साक्षात् नेता हैं। यथा–

अर्थाद् गुरुः स एवास्ति श्रेयोमार्गोपदेशकः।
भगवांस्तु यतः साक्षान्नेता मोक्षस्य वर्त्मनः।।

(पंचाध्यायी-620)

आचार्य, उपाध्याय, साधु गुरु हैं

वर्तमान में साक्षात् अर्हन्त (तीर्थंकर) भगवान नहीं है, लेकिन पंचपरमेष्ठी में आचार्य, उपाध्याय तथा साधु को भी मोक्षपथ-प्रदर्शक स्वरूप गुरु कहा गया है। जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन गुणों के द्वारा बड़े बन चुके हैं, उनको गुरु कहते हैं अर्थात् आचार्य, उपाध्याय और साधु –ये तीन परमेष्ठी गुरु कहे जाते हैं। यथा–

सुस्सूसया गुरुणं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैः गुणैर्गुरुतया गुरव इत्युच्यन्ते आचार्योपाध्यायसाधवः।

(भगवती आराधना, विजयोदया टीका-302)

पंचाध्यायी के (621, 637) में रचनाकार आचार्य, उपाध्याय व साधु को गुरु की संज्ञा देते हुए नय व दृष्टान्त से इस प्रकार समझाते हैं–

तेभ्योऽर्वागपि छद्मस्थरूपास्तद्रूपधारिणः।
गुरवः स्युर्गुरोर्न्यायान्नान्योऽवस्थाविशेषभाक्।।
अथास्त्येकः स सामान्यात्सद्विशेषात् त्रिधा गुरुः।
एकोऽप्यग्निर्यथा तार्ण्यः पार्ण्योदार्व्यस्त्रिधोच्यते।।

इन अर्हन्त और सिद्धों के पूर्वगामी होकर भी जो अल्पज्ञ है और उसी रूप अर्थात् दिगम्बरत्व, वीतरागत्व और हितोपदेशित्व को धारण करने वाले हैं वे गुरु हैं, क्योंकि इनमें न्यायानुसार गुरु का लक्षण पाया जाता है। ये

उनसे भिन्न और कोई दूसरी अवस्था विशेष को धारण करने वाले नहीं हैं। इनमें अवस्था विशेष पायी जाती है, यह बात युक्ति, अनुभव और आगम से सिद्ध है, क्योंकि इनमें संसारी जीवों से कोई विशेष अतिशय होता है। जो संसार अवस्था से आगे बढ़कर सम्यक्त्व के साथ महाव्रती हो गए हैं, किन्तु देवत्व को प्राप्त नहीं हुए है, उनकी गुरु ही संज्ञा होती है। इसमें उन सब गुणों का विकास प्रारम्भिक अवस्था में प्रयोगरूप से देखा जाता है, जो विशेष रूप से देव में पाये जाते हैं। वे गुण मुख्यतया दिगम्बरत्व, हितोपदेशित्व और वीतरागत्व हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि सामान्य रूप से गुरु एक प्रकार का है और अवस्था विशेष की अपेक्षा से तीन प्रकार के हैं। जैसे अग्नि यद्यपि एक ही है तो भी वह तिनके की अग्नि, पत्ते की अग्नि और लकड़ी की अग्नि, इस तरह अनेक प्रकार की कही जाती है। वैसे ही प्रकृत में जानना चाहिए।

गुरु का स्वरूप

रत्नत्रय से युक्त, पाँच महाव्रतों से सम्पन्न, धैर्य जिसका पिता, क्षमा जिसकी जननी (माँ), शान्ति जिसकी पत्नी, सत्य जिसका पुत्र, दया जिसकी बहिन, करुणा जिसकी पुत्री, संयम जिसका भाई, ज्ञानामृत जिसका भोजन, दिशाएं जिसके वस्त्र और भूमि जिसकी शय्या हो, वही सच्चा गुरु है। जो भीड़ में रहकर भी अकेले जीता हो। जिसे लोक और परलोक के विषयों की चाह नहीं है, वही परम तपस्वी सम्यक् गुरु है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी सच्चे गुरु के स्वरूप का कथन अपने ग्रन्थराज 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' (10) में इस प्रकार करते हैं–

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते।।

जो पंच इन्द्रिय-विषय और सांसारिक सुखों की आशा से रहित हैं, आरम्भ-परिग्रह से रहित हैं और ज्ञान, ध्यान तथा तप में सदा लीन रहते हैं, वे तपस्वी गुरु प्रशंसनीय व वन्दनीय हैं।

इस प्रकार जो पूर्वोक्त तप, शील और संयमादिक को धारण करने वाले हैं, वही साक्षात् गुरु हैं और नमस्कार करने योग्य हैं, किन्तु उससे भिन्न गुरु नहीं हो सकता है। यथा-

इत्युक्तव्रत-तपःशीलसंयमादिधरो गणी।
नमस्यः स गुरुः साक्षादन्यो न तु गुरुर्गणी।।

(पंचाध्यायी-658)

अमितगति श्रावकाचार (43) में कहा गया है–

ये ज्ञानिनश्चारुचरित्रभाजो
ग्राह्या गुरूणां वचनेन तेषाम्।
संदेहमत्यस्य बुधेन धर्मो
विकल्पनीयं वचनं परेषाम्।।

जो ज्ञानवान सुन्दर चारित्र के धरने वाले हैं, उन गुरुओं के वचनों में सन्देह छोड़कर धर्म-ग्रहण करना उचित है। इसके अतिरिक्त, गुरु के स्वरूप को इस प्रकार भी स्पष्ट किया गया है– **देहे निर्ममता गुरौविनयता नित्यं श्रुताभ्यासता, चारित्रोज्ज्वलता महोपशमता संसारनिर्वेगता। अन्तर्बाह्यपरिग्रहत्यजनता धर्मज्ञता साधुता, साधो साधुजनस्य लक्षणमिदं संसारविच्छेदनम्।।**

अर्थात् जो देह के प्रति निर्ममता भाव रखते हैं, गुरु के प्रति विनय भाव को धारण करते हैं, नित्य ही श्रुत-(शास्त्र)अभ्यास में तत्पर रहते हैं, जो चारित्र को सतत उज्ज्वल रखते हैं, जिन्होंने मोह को जीत लिया है, जो प्रतिसमय संसार से भयभीत हैं, अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह को त्याग दिया है, जो धर्म से पूर्ण और सज्जनता/सरलता सहित हैं। यही साधुओं का लक्षण कहा गया है। ऐसे साधु ही इस संसार का विच्छेद कर मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

गुरु का महत्त्व

पति बिना स्त्री, प्रजा बिना राजा और गुरु बिना शिष्य अधूरे हैं। जड़ से चेतन की ओर ले जाने वाले गुरु होते हैं। मृण्मय जीवन को चिन्मय बनाने वाले गुरु होते हैं। गुरु बिन ज्ञान नहीं मिलता और ना ही गुरु बिन ध्यान फलता। गुरु प्रज्ञा-चक्षु प्रदान करने में निमित्त है। अपने जीवन में एक गुरु जरूर बनाओ, चाहे वह मिट्टी का ही क्यों न हो। गुरु द्वारा दिया गया गुरुमन्त्र प्रत्येक कार्य की सिद्धि करता है। कहा भी है–

गुरुप्रदिष्टं नियमं सर्वकार्याणि साधयेत्।
यथा च मृत्तिका द्रोणः विद्यादानपरो भवेत्।।

गुरु द्वारा दिया गया नियम सभी कार्यों की सिद्धि कराता है, जैसे भिल्लराज एकलव्य गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसे ही साक्षात् गुरु मानकर धनुर्वेद विद्या साधन करता था, उसे इस मृतिकायम 'गुरु' प्रसाद से विद्याएँ सिद्ध हो गई थीं।

सच्चे शिष्य के लिए गुरु ज्ञानदीप का कार्य करते हैं। कहा भी है– 'गुरोरेव प्रसादेन लभ्यते ज्ञानलोचनम्'(पद्मनन्दिपंचविंशतिका, 6/18) गुरु के ही प्रसाद से (शिष्य को) ज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त होते हैं। अनन्तकाल के अज्ञानरूपी अन्धकार का क्षय कर वे ज्ञानरूपी सूर्य को उद्घाटित करते हैं। यथार्थ वस्तुतत्त्व से गुरु ही शिष्य को परिचित कराते हैं। तीक्ष्ण

बुद्धिवाला गुणवान पुरुष भी गुरु के बिना उसी प्रकार धर्म का स्वरूप ज्ञात नहीं कर सकता, जिस प्रकार कानों तक लम्बी सुन्दर और निर्दोष आँखों वाला व्यक्ति यदि अन्धकार में आँखें फाड़-फाड़ कर देखे तो भी बिना दीपक के उसे वस्तु दृष्टिगत नहीं होती है। यथा–

विना गुरुभ्यो गुणवान्नरोऽपि,
धर्मं न जानाति विचक्षणोऽपि।
आकर्णदीर्घोज्ज्वललोचनोऽपि,
दीपं विना पश्यति नान्धकारे।।

जिसके जीवन में गुरु नहीं, उसका जीवन शुरू नहीं –यह अनुश्रुति जगप्रसिद्ध है। इसलिए जैनाचार्यों ने कहा है कि गुरु के बिना सभी पशु के समान है। पुराणों में अनेक प्रसंगों में यह पढ़ने को आता है कि जिस नगर व उद्यान में गुरु विराजमान हो जाते हैं, वहाँ अकाल में भी पेड़ों में फूल-फल लग जाते हैं। दुर्भिक्ष भी सुभिक्ष में बदल जाता है। इन्द्रभूति गौतम कहते हैं कि जहाँ स्याद्वाद सिद्धान्त की चर्चा हो और जहाँ वीर दिगम्बर साधु हो वहाँ पर निश्चित ही विजय होती हैं, ध्रुव आनन्द तथा समाज में शाश्वत परस्पर आदर-भाव विद्यमान रहता है। यथा–

यत्र स्याद्वादसिद्धान्तो यत्र वीरो दिगम्बरः।
तत्र श्रीविजयो भूतिर्ध्रुवानन्दो ध्रुवादरः।।

और भी दिगम्बर गुरुओं के महत्त्व का दिग्दर्शन सोमदेव सूरि कराते हुए कहते हैं कि पद्मिनी जाति की स्त्रियाँ, राजहंस पक्षी और निर्ग्रन्थ दिगम्बर तपस्वी साधुगण जिस देश में विहार करते हैं, वहाँ निश्चित ही सुभिक्ष अर्थात् पर्याप्त धन-धान्य एवं समाज व घर में सदा खुशहाली होती है, ऐसा निर्देश किया गया है। यथा–

पद्मिनी राजहंसाश्च निर्ग्रन्थाश्च तपोधनाः।
यं देशमुपसर्पन्ति सुभिक्षं तत्र निर्दिशेत्।।

कर्मवशात् अनादिकाल से यह जीव संसार में भटक रहा है। जन्म-मरण के चक्र में घूम रहा है। इस महाभयानक संसार सागर से निकालने वाला, तारनेवाला यदि कोई है तो वह गुरु ही है, जो जन्म-मरण की अनादि सन्तति को समाप्त करने का सम्यक् दिग्दर्शन कराते हैं। गुरुओं/साधुओं के दर्शनमात्र से ही पुण्य का बन्ध होता है। इसलिए जैनाचार्यों ने गुरु को तीर्थरूप कहा है; क्योंकि तीर्थकृत पुण्य तो समय आने पर फलदायी होता है, किन्तु गुरु-दर्शन का पुण्यफल तो शीघ्र ही मिल जाता है। इस प्रकार जैन अध्यात्म-साधना में गुरु की उपादेयता, अनिवार्यता व महत्ता स्पष्ट हृदयंगम हो जाती है।

ooo